Bodhi-Path Year 2022 January Issue Volume 22 Page No 3-13

# भिक्षु जगदीश काश्यप : आधुनिक भारत में बौद्ध-पुनर्जागरण के पुरोधा

**डॉ० गोविन्द कुमार मीना**
शोधार्थी
पालि एवं बौद्ध अध्ययन विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
**E.mail :- govind@bhu.ac.in**

## सारांश

भगवान् बुद्ध ने जिन प्रश्नों के समाधान खोजने हेतु संघर्ष किया, वे और कहीं नहीं बल्कि मनुष्य के चित्त के अन्दर ही समाहित थे। इस हेतु उन्होंने जीवन के ऐसे समस्त सुखों का त्याग करके ऐसे पथ का वरण किया, जिनके लिए अविद्या के आवरण वाला पुरुष आजीवन संघर्ष करता है। भगवान् बुद्ध ने मनुष्य के जीवन को सरल बनाने हेतु ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, जो तत्कालीन समाज में प्रथम प्रयास माना जा सकता है। उनके द्वारा प्रतिपादित पथ को अनुकरणीय अनेक लोगों ने बनाया एवं न सिर्फ तत्कालीन समय के लोगों ने बल्कि उस परम्परा का अनुकरण लगभग 2600 वर्षों के व्यतीत होने के पश्चात् भी बौद्ध धर्म के अनुयायियों कर रहे हैं। यह इसके वैज्ञानिकता एवं तार्किकता से आबद्ध होने को दर्शाता है।

आधुनिक सन्दर्भ में देखें, तो इस बात का बोध होता है कि बौद्ध भिक्षु एवं भिक्षुणियों ने धर्म के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। इसके अतिरिक्त गृहस्थ अनुयायियों का भी योगदान अनुकरणीय रहा है।आधुनिक समय में भिक्षुत्रय में से एक जगदीश काश्यप का योगदान अतुलनीय रहा है।बौद्ध धर्म को उसकी जड़ों में पुनः स्थापित करने एवं बिहार के वासियों को इस स्थान के प्राचीन गौरव से परिचित करवाने में भिक्षु जगदीश काश्यप के योगदान का कोई साम्य नहीं है। नालन्दा के पुरावशेषों पर नवनालन्दा महाविहार की स्थापना का उनके द्वारा किया गया कार्य आज बौद्ध धर्म की शिक्षा का प्रमुख केन्द्र बनकर उभरा है।

**कूट शब्द** :- भिक्षु जगदीश काश्यप, भिक्षुत्रय, नालन्दा एवं नवनालन्दा महाविहार।

## विषय प्रवेश

भगवान  बुद्ध को प्रथम ऐसे ऐतिहासिक महापुरुष के रूप में स्वीकार जनसामान्य के द्वारा किया जाता है, जिनके द्वारा समाज को एक नवीन दिशा प्रदान की गयी। बुद्ध ने जिस मार्ग का अनुगमन  किया, उसके पूर्व में वे इस बात से भली-भाँति परिचित थे कि यह राह उतनी आसान नहीं होगी। पर ऐसे विशेष एवं विरले व्यक्तित्व जो जीवन में बहुत बड़े-बड़े लक्ष्य को साधते हैं, निःसंदेह वे आने वाली चुनौतियों को भाँप लेते हैं, इसलिए अपने आपको वैसा ही बना लेते हैं। भगवान् बुद्ध ने अपने समग्र जीवन में ऐसी चुनौतियों का सामना किया। आजीवन उन्होंने यह प्रयास किया कि जिन धर्मों को इतने कठिन प्रयासों से प्राप्त किया, उसका लाभ इस संसार के अधिक से अधिक मनुष्य ले पाएं।

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात धम्म की पताका को लहराने का श्रेय भिक्षु-भिक्षुणियों, राजाओं एवं उपासक-उपासिकाओं को जाता है, एवं इस कार्य में उनका योगदान अविस्मरणीय हैं। ऐसे बौद्ध अनुयायियों ने धर्म को जीवंत रखने में अपना सर्वस्व न्योछावर किया। एक बात तो बौद्ध धर्म के सन्दर्भ में सत्य है कि स्वयं को जीवित रखने हेतु जितना संघर्ष बौद्ध धर्म ने किया, उतना संभवतया किसी अन्य धर्म ने किया होगा। इसके पीछे जो कारण है, वह एकदम स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म ने जीवित रहने हेतु किसी भी अन्य मौजूद शक्ति से समझौता नहीं किया। यह तथागत की समस्त देशनाओं पर उसी प्रकार से स्थिर बना रहा किंतु आधुनिक भारत में बौद्ध धर्म मृतप्रायःहुआ, इसके अनेक कारण थे-

1. बौद्ध धर्म के ऊपर सबसे बड़ा एवं तीक्ष्ण प्रहार 'नालन्दा एवं अन्य बौद्ध विश्वविद्यालयों को ध्वस्त करना' था, जब इन विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों को तुर्क आक्रांताओं एवं कुछ यहाँ के निवासियों द्वारा नेस्तनाबूद करने में सहयोग किया।
2. दूसरा आधुनिक समय में उचित ग्रन्थों के अभाव में बौद्धस्थलों के बारे में मिथकीय कथाओं को शामिल किया गया। जिससे जनसामान्य में एकदम भिन्न इतिहास का प्रसार हुआ।

इस कार्य में सबसे सराहनीय प्रयास ब्रिटिश पुरातत्ववेत्ताओं के अतिरिक्त बौद्ध भिक्षुओं द्वारा किया गया। उन्होंने इसके पुनरुत्थान में सहयोग किया। भारतीय बौद्ध भिक्षुओं में भिक्षुत्रय महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भिक्षु जगदीश काश्यप एवं भदन्त आनंद कौसल्यायन का कार्य महत्वपूर्ण है। भिक्षुत्रय ने धर्म का कार्य जीवन में मिशन की तरह किया। जिस पेड़ को 2582 वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध ने रोपा था, उस पेड़ को इन्होंने अपने अथक प्रयासों से सींचा था। जिस सिद्धान्त "*चरथ, भिक्खवे, चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकंपाय अत्थाय हिताय सुखान देवमनुस्सानं। देसेथ, भिक्खवे, धम्म आदिकल्याण मज्झेकल्याण परियोसानकल्याण सात्थं, सब्बजनं केवलं परिपुण्ण परिसुद्ध ब्रह्मचरिय पकासेथ'*अर्थात

भिक्षुओं! अनेक जनों के हितों के हित और सुख के सम्पादन के लिए, लोक पर दया करने के लिए, देवता और मनुष्यों के हित और सुख साधने के लिए विचरण करो। वहाँ जाकर प्रारम्भ में भी कल्याणकारक, मध्य में भी कल्याणकारक और अन्त में भी कल्याणकारक इस धम्म का उपदेश करो"[1] को आधार बनाते हुए भगवान् बुद्ध ने उपदेश अपने भिक्षुओं को दिया। इसी सिद्धान्त के चलते बुद्ध के अनन्तर भिक्षुओं ने धर्म की शिक्षाओं को दूर-सुदूर तक पहुँचाया। इसकी परिणति सम्राट अशोक के काल तक आते-आते और भी ज्यादा सुदृढ़ हुई। सम्राट अशोक ने न सिर्फ भारत में अपितु भारत के बाहर भी बौद्ध भिक्षुओं को धर्म का प्रचार करने के लिए भेजा। अन्य देशों में उन्होंने धर्म का प्रचार भी उन देशों की तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार किया, जो आज भी उन देशों में उसी रूप में फल-फूल रहा है। ज्ञान की विशाल परम्परा को समेटे हुए नालंदा महाविहार के नेस्तनाबुद होने के पश्चात् भारत में बौद्ध धर्म का बड़ी तेजी से पतन हुआ। भारत के स्थानीय निवासी लगभग बौद्ध धर्म को भूल ही गए थे। ब्रिटिश पुरातत्ववेत्ताओं (जेम्स प्रिंसेप एवं कनिंघम) की खोज-पड़ताल के पश्चात् उन सभी लेखों का अध्ययन किया जो सम्राट अशोक द्वारा निर्मित थे। तब जाकर ही कालकवलित हुआ बौद्ध धर्म पुनश्चःजनसामान्य की नज़र में आया।

आधुनिक भारत में बौद्ध धर्म के पुनर्जागरण में भिक्षु जगदीश काश्यप का योगदान अतुलनीय है। उन्होंने बौद्ध धर्म के कारवाँ को बढ़ाने का कार्य एक मिशनरी के रूप में देखा और अपनी अन्तिम श्वास तक बौद्ध धर्म की पताका को लहराने का कार्य किया।

ब्रिटिश पुरातत्ववेत्ताओं के द्वारा किये गए प्रयासों के पश्चात् यहाँ के स्थानीय निवासियों में चेतना का विकास हुआ। इनमें भिक्षुत्रय द्वारा किये गए प्रयास बौद्ध धर्म के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में दर्ज है। भिक्षुत्रय में जगदीश काश्यप एक ऐसा नाम है, जिन्होंने आधुनिक समय में बौद्ध धर्म के पुनर्जागरण करने में महत्वपूर्ण योगदान है।

## भिक्षु जगदीश काश्यप का जीवन परिचय

भिक्षुकाश्यप का जन्म 7 जुलाई, 1908 को रांची (बिहार) में हुआ था, बचपन में वे जगदीश नारायण के नाम से जाने जाते थे। जगदीश नारायण का पैतृक घर रौड़निया गाँव में था, जो राजगीर और नालंदा में स्थित बराबर की पहाड़ियों के निकट में था, जिनका सम्बन्ध सम्राट अशोक के समय से था। इन पहाड़ियों में स्थित गुफाओं को सम्राट अशोक ने आजीवक सम्प्रदाय को दान में दी थी। जगदीश नारायण बहुत सम्मानीय कायस्थ परिवार से सम्बद्ध थे। राँची कोर्ट में पिता आदित्य नारायण पेशेवर वकील थे, सरकारी अधिवक्ताओं में

[1] स्वामी द्वारिकादास शास्त्री,*महावग्गपालि* ( अनुवादक एवं सम्पादक ) वाराणसी, बौद्ध-भारती, 2013, पृ. 35

उनका उच्च स्थान था, किन्तु पिताजी की असामयिक मृत्यु ने उन्हें व्यथित कर दिया। आदित्य नारायण ने सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में राजनीतिक गतिविधियों में भाग लिया। इन सबका जगदीश नारायण के व्यक्तित्व पर गहरा असर पड़ा। जगदीश नारायण की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा राँची में हुई। उन्होंने अपनी मैट्रिक की परीक्षा सन 1925 में राँची जिला स्कूल से उत्तीर्ण की। उनके सभी भाइयों की अपेक्षा औसतन अध्ययन में ठीक थे किन्तु रहन-सहन में थोड़े देहाती और आदतों में सरल थे। भिक्षु काश्यप ने समाज को देखने के दृष्टिकोण में स्वयं को रूढ़िवादी सोच से मुक्त रखा, एवं प्रगतिशीलता को स्वीकार किया। कपोल-कल्पित कल्पनाओं एवं पाखण्ड की उनके जीवन में कोई स्थान नहीं था।

चूँकि उस समय भारत ब्रिटिशों का उपनिवेश था। इसलिए यहाँ की संस्कृति का घालमेल हो गया था। बहुत से ऐसे लोग भी थे, जिन पर ब्रिटिशों की रहन-सहन का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है किंतु जगदीश नारायण ने उसी भारतीयपन में जीवनयापन करना गौरवशाली समझते थे। उन्होंने बचपन से ही पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण नहीं किया इसलिए वह पश्चिम की पोशाक भी नहीं पहनते थे बल्कि उसके बजाय खादी की धोती एवं कुर्ता पहनने में गर्व की अनुभूति करते थे। बचपन से ही उनको सादगी भरा जीवन पसंद रहा।

तत्कालीन समय में बिहार में पटना राजनैतिक रूप से एकदम केन्द्र में था। साथ ही उच्च शिक्षा के केन्द्र के रूप में पटना प्रसिद्ध था। इसलिए जगदीश नारायण को उच्च अध्ययन के लिए पटना भेजा गया। जगदीश काश्यप ने इंटरमीडिएट न्यू कॉलेज से 1927 में किया तथा स्नातक पटना कॉलेज से पूर्ण किया। अध्ययन को नियमित रखने हेतु जगदीश नारायण पटना से वाराणसी गए,वहाँ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से 1931 में परास्नातक दर्शन विषय में पूर्ण किया। अगले ही वर्ष संस्कृत से परास्नातक किया। पटना कॉलेज और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में वे न सिर्फ पढाई में अच्छा कर रहे थे बल्कि दूसरे महत्वपूर्ण उद्देश्यों का अनुकरण बहुत गंभीरता से कर रहे थे। यह उद्देश्य सामाजिक सुधार और राष्ट्रवादी आन्दोलन से संबंधित था। उन्होंने बचपन से ही खादी पहनना प्रारम्भ कर दिया था उनके उस उद्देश्य को यहाँ बल मिला। अब वे स्वयं द्वारा काते खादी से निर्मित वस्त्र कुर्ता एवं धोती पहनने लगे। राष्ट्रवादी गतिविधियों में भाग लेते हुए पटना में साइमन कमीशन का विरोध किया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को चयन करने का एकमात्र उद्देश्य यही था कि यह संस्थान भारत को ब्रिटिशराज से मुक्त करवाने के लिए राष्ट्रवादियों का एकमात्र केंद्र बिंदु रहा। एक विद्यार्थी के रूप में उन्होंने सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक गतिविधियों में पूर्ण रूप से भाग लिया। इससे वे आन्दोलन की मुख्य धारा में आये। उन्होंने 1931 में सत्याग्रह आन्दोलन में रूचि ली किन्तु स्वयं को इसमें शामिल नहीं किया क्योंकि वे सामाजिक सुधार आन्दोलन का कार्य कर रहे थे।

इसके पश्चात् आर्य समाजी संस्था से भी उनका जुडाव रहा, किन्तु समाज में विकृत रूप से फैली हुई जाति, कर्मकांड आदि से उनका मन भर गया था किन्तु आर्य समाज में जाति व्यवस्था का जो रूप उन्होंने देखा; आर्य समाज के सदस्य स्वयं को जातीय पृष्ठभूमि से मुक्त नहीं कर पाए थे। सामाजिक सम्बन्धों में इन सबको देखकर आर्य समाज से जगदीश जी नारायण का मोहभंग हो गया।

परास्नातक के पश्चात् वे बौद्ध दर्शन में शोध करना चाहते थे। डॉ. भगवान् दास (एक सम्मानीय नागरिक एवं काशी के दार्शनिक अध्येता) और अयोध्या प्रसाद (उनके आर्य समाजी गुरु) ने उनको प्रोत्साहित किया किन्तु इसके लिए उन्होंने 'पालि त्रिपिटक' को मूल में पढ़ने का सुझाव दिया। जब वे संस्कृत की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे तब उनका प्रथम परिचय पालि से हुआ। गुरुकुल में उन्होंने पालि अध्ययन का कार्य अनवरत् रूप से जारी रखा। धम्मपद की प्रथम गाथाओं ने उन्हें बहुत आकर्षित किया जो 'चित्त को आधार' बनाकर लिखी गयी। इसके पश्चात् आगे के अध्ययन के लिए काश्यप जी ने श्रीलंका के '**विद्यालंकार परिवेण संस्थान**' को भावनात्मक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने स्वयं को सत्य की अन्वेषण करने वाला बताया। उन्होंने भारत की जमीन से मृतप्रायः हो चुकी बौद्ध परम्परा को पुनःजीवित करने के लिए वहाँ जाकर अध्ययन करने का निवेदन किया किन्तु तब इसका कोई उत्तर उन्हें नहीं मिला। इसलिए उन्होंने आशा छोड़ दी। कुछ दिनों पश्चात् उन्हें विदेश से एक पत्र मिला जो स्वयं राहुल जी ने लिखा था 'उन्होंने जगदीश नारायण से पटना में मिलने की इच्छा जाहिर की। पटना में काश्यप जी के.पी. जायसवाल (भारतीय साहित्य, इतिहास एवं दर्शन का समेकित बुद्धिजीवी) से मिले, राहुल सांकृत्यायन ने तिब्बत से जिन दुर्लभ पांडुलिपियों का संग्रह किया था उनको के.पी.जायसवाल के निवास स्थान पर रखा। आज वे पांडुलिपियाँ उचित देखरेख के अभाव नष्ट होती जा रही है। राहुल जी और काश्यप में बुद्ध, बौद्ध धर्म और बौद्ध देशों के ऊपर काफी गहन विमर्श हुआ। राहुल जीने *'कालामसुत्त'* का उद्धरण देते हुए भिक्षु काश्यप का ध्यानाकर्षण किया जिसमें *केसमुत्तिसुत्त* या *कालामसुत्त* में बुद्ध कहते हैं कि "किसी बात को इसीलिए नहीं स्वीकार करना चाहिए कि वह परम्परा से चली आ रही है या धर्म गुरुओं ने उसे कहा है या वह धर्म ग्रन्थों का हिस्सा है। बल्कि किसी भी बात को मनुष्य को स्वयं अपने विवेक पर परखकर स्वीकार करना चाहिए।" इस बात ने काश्यप को प्रभावित किया। तब ही भंते जी ने श्रीलंका जाकर मूल ग्रन्थों का अध्ययन करने का निर्णय लिया।

श्रीलंका प्रवास के दौरान ही काश्यपजी ने राहुल जी के साथ मिलकर *दीघनिकाय* का अनुवाद प्रारम्भ किया। इसके अतिरिक्त पेनांग प्रवास के दौरान उनके द्वारा दिए गए व्यक्तव्यों

का संकलन करके चीनी बौद्ध संगठन ने **'बौद्ध धर्म'** शीर्षक से 1935 में प्रकाशित करवाया। 1936 में भारत आने के पश्चात् उन्होंने बौद्ध धर्म के प्रचार का कार्य बड़े फलक पर करने का निर्णय लिया। इस कार्य में भिक्षुत्रय ने साथ में कार्य करने का निश्चय किया। अगले ही वर्ष सारनाथ में आने के पश्चात वे महाबोधि सोसायटी से सम्बद्ध हो गए, साथ में राहुल सांकृत्यायन एवं भदंत कौसल्यायन थे तीनों ने मिलकर पालि त्रिपिटक का हिन्दी अनुवाद करना प्रारम्भ किया। काश्यप जी इससे भी ज्यादा सोच रहे थे वे किसी संस्थान से जुड़कर लोगों को बौद्ध धर्म के बारे में अवगत कराना चाहते थे। सारनाथ में मूलगंध कुटी विहार को अपना आवास स्थल बनाया, इसके पश्चात् यही से महाबोधि सोसायटी के कार्यों को पूरा किया जाने लगा। देवप्रिय वलिसिन्हा (जनरल सेक्रेटरी महाबोधि सोसायटी ऑफ़ इंडिया) और बाबा राघोदास ने सारनाथ में स्कूल खोलने का निर्णय किया। इसके लिए उन्होंने प्रिंसिपल के रूप में भिक्षु काश्यप को आमंत्रित किया। इस पद को उन्होंने बहुत कम मासिक पगार के बदले में स्वीकार किया। उनकी शैक्षणिक गतिविधियाँ और सम्बन्धों में तेजी से वृद्धि हुई। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लोगों ने उनके कार्यों को मान्यता देना प्रारम्भ कर दिया। शीघ्र ही 'त्रिपिटकाचार्य' कीउपाधि से उनको सम्मानित किया गया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने भिक्षु काश्यप ने 9 वर्षों तक पालि के अध्यापन का कार्य किया। उन्होंने संस्कृत विभाग में न केवल पालि भाषा का अध्यापन करवाया, वरन दर्शन विभाग में तर्कशास्त्र का विशद अध्यापन करवाया।

उनकी शैक्षणिक गतिविधियों और सम्बन्धों का सारनाथ में बड़े स्तर पर विस्तार हुआ। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यापन के दौरान सेठ जुगल किशोर बिडला ने खान-पान, आवश्यकता की वस्तुएँ तथा 50 रुपए प्रति माह देना तय किया। तब सारनाथ से वाराणसी तक बस सुविधा नहीं थी, काश्यपजी अध्यापन के लिए जब आते थे अक्सर यह दूरी पैदल या कभी रिक्शे से तय करते थे। यह उनकी लगन और बौद्ध धर्म के उत्थान के लिए भावना थी। इस बात को सेठ बिडला ने देखा तथा भिक्षु काश्यपजी के लिए परिसर में ही आवास व्यवस्था की जिसे 'बुद्ध कुटी' कहा गया।

1949 में भिक्षु काश्यप ने वाराणसी छोड़ने का निर्णय किया, भारत को ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता मिल चुकी थी। इसके पश्चात् लोगों की चेतना का बड़ी तेजी से विकास हुआ। इसी समय एशियन राष्ट्रों के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हुए जिनमें बौद्ध धर्म की महती भूमिका रही। भारत के राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद ने भिक्षु काश्यप को वर्मा की यात्रा के दौरान साथ लिया। उसी समय भिक्षु काश्यप ने बोधि वृक्ष की एक टहनी अपने साथ ली, यह भारत की ओर से वर्मा वासियों को उनकी स्वंतत्रता के उपलक्ष्य में उपहार स्वरूप था। इसके पश्चात

भिक्षु काश्यप को भगवान् बुद्ध ने अग्रश्रावक सारिपुत्र एवं मोग्गलान की अस्थि-अवशेष लेकर तिब्बत भेजा गया। तत्कालीन भारत के प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरु ने बौद्ध धर्म के 'पंचशील' के आधार पर चीन के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किए। इन सबको देखकर भिक्षु जी को जमीनी स्तर पर कार्य करने की प्रेरणा मिली।

भिक्षु काश्यप ने इसके पश्चात् नालंदा, राजगीर एवं बोधगया की यात्रा की। सर्वप्रथम उन्होंने अपने नए प्रोजेक्ट के लिए वातावरण तैयार किया। पुरानी परम्परा को याद करते हुए उन्होंने मगध वाले क्षेत्र में 'चारिका' करने का निर्णय लिया। यह मगध वाले लोगों के लिए आश्चर्य की बात थी, उन्होंने पिछली आठ शताब्दी से उस क्षेत्र में 'चीवर' पहने कोई भिक्षु नहीं देखा था। वे अपने क्षेत्र के पहले व्यक्ति थे जिन्होंने मगध वाले क्षेत्र में बौद्ध धर्म के प्रचार का बीड़ा उठाया। भारत से बौद्ध धर्म का ह्रास हुए शताब्दियाँ गुजर चुकी थी। इतिहास और पुरातत्त्व विभाग के विद्यार्थियों के अतिरिक्त कोई नहीं जानता था। उस समय के समाज में प्रभाव रखने वाले एक विशेष वर्ग ने बुद्ध और बोधिसत्त्वों को उसी तरीके से पूजना और पुजवाना प्रारंभ कर दिया जिस रूप का विरोध बुद्ध ने किया था। उन्होंने स्थानीय लोगों को बताया कि सदियों पूर्व इसी ऐतिहासिक जमीन पर सिद्धार्थ ने जन्म लिया। उन्होंने इतना बड़ा समेकित दर्शन दिया, जिसमें मनुष्य के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया गया है। भिक्षु काश्यप ने बताया कि किस तरह "कपिलवस्तु के राजकुमार ने फल्गु (निरंजना) के तट पर ध्यान साधना की और उन्होंने पीपल के वृक्ष के नीचे बोधि प्राप्त की। उन्होंने बताया कि बौद्ध धर्म न केवल भारत में बल्कि भारत के बाहर भी कई देशों में फला-फूला। जिसके वर्तमान साक्ष्य दृष्टव्य है। अपने समृद्ध अतीत के बारे में बताते हुए नालंदा की विश्वख्याति के बारे में लोगों को परिचित करवाया। विदेशों से भी *ह्वेनसांग* जैसे विद्यार्थी यहाँ अध्ययन करने के उद्देश्य से आये। यह कहना दुर्भाग्य ही होगा कि ज्ञान की इतनी समृद्ध परम्परा यहाँ तेजी से लुप्त हो गयी। "मगध के लोगों को अपने अतीत की गौरव गाथा बताकर भिक्षु काश्यप श्रीलंका गए तथा वहां से भारत की ऐतिहासिक धरोहर (मूल त्रिपिटक) को साथ लाएं। जब उन्होंने श्रीलंका की यात्रा की तब उन्हें इस बात का पता चला कि पांचवीं सदी में मगध के पुत्र *बुद्धघोष* भी सिंहल गए थे तथा पालि अट्ठकथाओं पर काम किया। एकबारगी उन्हें गर्व की अनुभूति हुई।

'बिहार' के अतीत का बखान जब वे लोगों के समक्ष कर रहे थे तब 'बिहार' नाम की ऐतिहासिकता को उन्होंने सिद्ध किया। 'इसको स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि बिहार की जमीन पर बुद्ध के समय बौद्ध भिक्षुओं के निवास करने के लिए अनेक विहारों का निर्माण करवाया गया। तब ही से इसे बिहार कहा गया।' इसके लिए कई जगहों के नाम में अतीत से

वर्तमान जगह की साम्यता करवायी। आधुनिक गाँव सारी-चक जो नालंदा के निकट स्थित है। यह सारिपुत्र के नाम से स्थित था। जब लोगों ने इसे सुना तो वे अपनी आँखों से आँसू रोक नहीं पाए।

यद्यपि उन्होंने बिहार के विभिन्न क्षेत्रों में यात्रा की किन्तु उन्होंने पटना और गया जिलों पर अपना ध्यान एकाग्र किया। वह पटना (मगध वाला हिस्सा) और गया में विश्वविद्यालय खोलना चाहते थे। इस कार्य के लिए उन्होंने गया कॉलेज (बिहार शरीफ) के प्राचार्य को राजी कर लिया। इस कॉलेज में भिक्षु काश्यप ने अवैतनिक रूप से पालि अध्यापन करवाने का निर्णय लिया। कॉलेज के विद्यार्थियों के बीच पालि भाषा बहुत लोकप्रिय हुई। इसके पीछे कारण यह था कि संस्कृत की अपेक्षा पालि भाषा सरल थी और इसमें अपेक्षाकृत अंक भी अच्छे प्राप्त होते थे।

भिक्षु काश्यप ने नालंदा के पुराने खंडहरों को देखकर मन में योजना बनायी कि उस स्थान पर कोई ऐसा संस्थान हो जो भारत के गौरवपूर्ण एवं समृद्ध अतीत को एकबारगी फिर से जीवित कर सके। भिक्षु काश्यप जब मस्तिष्क में ऐसा विचार कर रहे थे तब ही बिहार सरकार ने ऐसे तीन संस्थान खोलने की योजना बनायी जिनमें संस्कृत, पालि एवं प्राकृत का अध्ययन करवाने का निर्णय लिया गया। इस शुरुआत के लिए जे.सी.माथुर (तत्कालीन आई.सी.एस) का योगदान सराहनीय है। उन्होंने ही भिक्षुकाश्यप को नालंदा में पालि संस्थान स्थापित करने के लिए आमंत्रित किया। दुर्भाग्य से उस समय तक भी नालंदा एक उजड़ा हुआ स्थान था जहाँ पर ऐसा कोई भवन नहीं था जिसको लेकर विधिवत पालि भाषा के अध्ययन एवं अध्यापन की व्यवस्था की जा सके किन्तु उनकी मेहनत और लगन के पश्चात् नव नालंदा महाविहार की संकल्पना को मूर्त रूप दिया जा सका। भारत के प्रथम राष्ट्रपति ने 20 नवम्बर, 1951 को इस संस्थान की नींव का पत्थर डाला। बौद्ध देशों के द्वारा इस संस्थान की सफलता के लिए शुभकामनाएं एवं उपहार प्रेषित किए गए। *परम पावन दलाई लामा* जी ने तिब्बती पांडुलिपियों का संग्रह प्रतिनिधिमंडल के हाथों भेजा। इसके पश्चात् जब वे संस्थान को स्थापित करने में व्यस्त थे, तब ही भिक्षुत्रय ने 'पालि टेक्स्ट सोसायटी' के संस्करण *खुद्दक निकाय* को देवनागरी में अनुवादित करने का कार्य किया, किन्तु महाबोधि सोसायटी के यह स्त्रोत भिक्षु काश्यप को संतुष्ट करने के लिए पर्याप्त नहीं थे। वह पालि त्रिपिटक का अच्छा संस्करण निकालने की जुगत में थे, जो इस देश के विद्यार्थियों के लिए काम में आ सके। भारत सरकार ने जब बुद्ध के महापरिनिर्वाण के 2500 वर्ष पर बुद्ध जयंती मनाने का संकल्प लिया गया तब ही उनके तिपिटक को देवनागरी में अनुदित करने के पंचवर्षीय प्रस्ताव को मान लिया गया। इसके लिए उनको राजेन्द्र प्रसाद, पं० जवाहरलाल नेहरू एवं

एस० राधाकृष्णन का सहयोग मिला। इसका पहला संस्करण 1956 में बुद्ध जयंती के अवसर पर निकाला गया, पूरा सेट 1961 दिसम्बर में भारत के प्रधानमंत्री श्री पं० जवाहरलाल नेहरु के द्वारा निकाला गया। इसके पश्चात् वे वाराणसी चले गए और वहाँ संस्कृत विश्वविद्यालय में पालि और बौद्ध अध्ययन विभाग के प्रथम प्रो० और विभागाध्यक्ष के पद पर आसीन होने का आमंत्रण मिला। 1965 तक वाराणसी में रहते हुए पालि भाषा को अकादमिक जगत में अनुशासन के तहत अध्यापन करवाया। 1965 के पश्चात् फिर से नालंदा जाकर नव नालंदा महाविहार में निदेशक पद ग्रहण किया। संस्कृत विश्वविद्यालय में त्रिपिटक के देवनागरी संस्करण पर काम चल रहा था इसके तुरंत पश्चात् ही उनके समूह के सदस्यों ने *'त्रिपिटक महाकोश'* पर कार्य प्रारंभ कर दिया। जब वह नालंदा लौटे तो उनके संपादन में 'पालि अट्ठकथा' पर कार्य प्रारंभ हुआ।उनके द्वारा संचालित दोनों प्रोजेक्ट पर तीव्रता से कार्य चल रहा था उसी के फलस्वरूप उससे होने वाले अनुदित ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए।

1974 में उन्होंने सारनाथ में अंतरराष्ट्रीय बौद्ध अध्ययन विश्वविद्यालय खोलने का संकल्प किया। इसमें सिक्किम के चोग्याल और स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने सहयोग किया। भिक्षु काश्यप ने सभी गतिविधियों में सक्रिय रहकर भाग लिया। विश्व के लोगों को जब उन्होंने दुःखमय अवस्था में देखा तो समाधान सिर्फ बौद्ध धर्म में ही दिखा। बौद्ध धर्म के सहारे ही सम्पूर्ण विश्व में शांति और समानता स्थापित की जा सकती है ऐसा उन्होंने विचार किया। सम्पूर्ण जीवन में बौद्ध धर्म के मिशनरी के रूप में उन्होंने कार्य किया। धार्मिक संकीर्णता को उन्होंने अपने विचारों में कोई जगह नहीं दी। जब उनकी ख्याति एक बौद्ध विद्वान के रूप में स्थापित होने लगी तब उन्हें बौद्ध देशों से आर्थिक सहयोग मिलने लगा, जिसमें वर्मा के भिक्षु उत्तमा, कित्तिमा और रेवतधम्माथेरो ने धर्म सम्बन्धी उनके प्रोजेक्ट पर सहयोग किया। वे थाई बौद्ध समाज के साथ बोधगया में भी सक्रिय रहें, 1954 में जापान के द्वारा प्रथम शांति स्तूप के उद्घाटन में आमंत्रित किये गए। इसके पश्चात् आदरणीय निचिदेत्सू ग्योशो फूजी के साथ मित्रवत रहे। उन्होंने भारत में जापान बौद्ध संघ के लिए कार्य किया। उन्होंने राजगीर के विश्वशांति शांति स्तूप वाले प्रोजेक्ट के लिए अपना सराहनीय योगदान दिया।

अपने जापानी मित्रों के समक्ष उन्होंने इच्छा जाहिर की - "अपनी सेवानिवृति के पश्चात् वे जीवन के अंतिम दिनों में राजगीर की रत्नागिरी की पहाड़ियों के बगल में 'शांति स्तूप' में रहना चाहते हैं तथा '*सद्धर्मपुंडरिकसूत्र*' का उपदेश करके अपना समय व्यतीत करना चाहते हैं। "जीवन के अंतिम दिनों में वे थेरवाद से बोधिसत्त्व आदर्श की ओर पलायन कर रहे थे।

इस प्रकार अपने सम्पूर्ण जीवन में बौद्ध धर्म के प्रचार का जो बीड़ा भिक्षु काश्यप ने उठाया था, वे उसी में सदैव संलग्न रहे। जब भी वे भारत की समृद्ध परम्परा के अतीत के बारे में सोचते थे तो उनका मन व्यथित हो जाता था, किन्तु वे इस समृद्ध परम्परा को वर्तमान में स्थापित करने के सभी आयामों पर सोचते थे। बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान के लिए उन्होंने अपना समस्त जीवन न्यौछावर कर दिया। उनके जीवन के बारे में सबसे ज्यादा प्रभावित करने वाली बात यह रही कि “किसी प्रोजेक्ट पर वे काम करते थे जब वह पूरा होकर उनके हाथ में आता था, बिना कुछ सोचे वे दूसरे प्रोजेक्ट पर कार्य प्रारंभ कर देते थे। यह ही उनकी बौद्ध धर्म के पुनर्जागरण के प्रति कटिबद्धता एवं प्रतिबद्धता थी, जिसे उन्होंने जीवन के अंतिम दिनों तक निभाया। गिरते स्वास्थ्य के बावजूद वे अपने प्रोजेक्ट में स्वयं को व्यस्त रखते और अंततः ऐसे महान व्यक्ति ने अंततः संघर्ष करते हुए 28 जनवरी, 1976 को निर्वाण प्राप्त किया।

ऐसे समर्पित भिक्षुओं के समर्पण से ही बौद्ध धर्म का आधुनिक समय में पुनर्स्थापना हुई है। इसमें अनगारिक धम्मपाल जी, जिन्होंने सीलोन से भारत में आकार बौद्ध धर्म को स्थानीय निवासियों के बीच में पहचान बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भिक्षु काश्यप ने नव नालन्दा महाविहार के रूप में बौद्ध धर्म का ऐसा स्तम्भ निर्मित किया है, जो वर्तमान में भी देश-विदेश के विद्यार्थियों के मध्य बौद्ध धर्म की शिक्षाओं को स्थापित कर रहा है। यह धर्म के प्रति उनका ऐसा योगदान है, जो सदैव उल्लेखनीय रहेगा।

# सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

• 1934 **:** *Buddhism and Essential of philosophy* (in Sanskrit), Vidyalankara parivena Sri Lanka.

• 1935 : *Buddha Dhamma* (in English), Lecture delivered at the chinese Buddhist association, penang.

• 1936 : *Díghanikāya* (Hindi Translation), jointly with Rahul Sankrityayan, Sarnath.

• 1937 : 1. *Milindaprasana* (Hindi Translation), Sarnath; 2nd edition, Kalimpong, 1951, 3rd edition Delhi.

2. Eleven Books of *Khuddaka Nikāya*.( Devnagari version of P.T.S edition, edited jointly with Rahul Sankrityayan and Anand Kausalyayana).

• 1938 : *Udāna* (Hindi Translation), Sarnath.

• 1940 : *Pāli Mahāvyākarana*(Hindi), 1stedition, Sarnath; 2nd edition, Delhi.

• 1942 *Buddhism for everybody* (revised edition of Buddha Dhamma), Sarnath; 2nd edition, Varanasi 1956.

• 1947 : *Pschātya Tarkasātra*, two Vols.(Hindi), Banaras Hindu University, Varanasi

• 1969 : *"A Buddhist View on the freudian Psychology"* In Mahabodhi, vol. 77 nos 4-5

• 1969 : *pañcappakarana Atthakath,* Pt. 2nd(kathāvatthu atthakathā), jointly with MaheshTiwary

• 1970 :*pañcappakarana Atthakathā*, Pt. 3rd (Yamaka-patthāna atthkatha), jointly with Mahesh Tiwary.

Volumes in the *Atthakathā* series (General Editor) untill 1973, Nalanda

• 2006 : *Studies in Pāli and Buddhism* (Editor- A K Narain), B.R. Publication), CA Division of BRP (INDIA)